RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-08
August-2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

साम्प्रदायिकता और काला पहाड़

डॉ. संतोष कौल काक

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष - हिंदी विभाग, बी. एम. रुइया गर्ल्स कॉलेज, मुम्बई

किसी धर्म विशेष के अनुयायियों के अधिकारों तथा हितों को राष्ट्रीय हितों के ऊपर रखने की भावना ही साम्प्रदायिकता है। साम्प्रदायिकता एक निश्चित प्रकार की विचार - व्यवस्था के कारण उपजती है | अतः बहु संस्कृतीय समाज के विभिन्न समूहों के बीच सत्ता व वर्चस्व के द्वंद्व के चलते सामाजिक तनाव एवं टकराव होते रहते हैं। अपने संकीर्ण हितों को पूरा करने के लिए जब कोई वर्ग - विशेष या समाज देश के हितों की अवहेलना करे , जब कोई सम्दाय जानबूझकर धार्मिक - सांस्कृतिक भेद के आधार पर राजनीति करे , तो सम्प्रदायवाद को बढ़ावा मिलता है । " जब कभी सम्प्रदायवाद , साम्प्रदायिकता , साम्दायिक दृष्टिकोण शब्दों का प्रयोग किया जाता है , तब इनका अर्थ दो सम्प्रदायों में विद्यमान विद्वेष , तनाव , संदेह अथवा संघर्ष के भाव को व्यक्त करना होता है | इस प्रकार का विद्वेष , तनाव , धर्म , भाषा अथवा प्रजाति के तत्वों पर आधारित होता है | भारत के सन्दर्भ में इस शब्द का प्रयोग विशेषतः विभिन्न धार्मिक सम्दायों के बीच अलगाव एवं वैमनस्य के भाव को अभिव्यक्त करता है | " 1.

शैवों - वैष्णवों , ब्राह्मण - बौद्ध आदि विभिन्न वर्णों के संघर्ष तो प्राचीन काल से भारत में होते चले आ रहे हैं। अनेक सम्प्रदायों , संस्कृतियों के मेल - जोल जहाँ हैं , वहाँ कभी - कभी तनाव और छोटे - मोटे झगड़े होना यूँ तो स्वाभाविक है | भारत में साम्प्रदायिकता की विचारधारा पहले भी थी और अब भी है | परन्त् राष्ट्रीय आन्दोलन और आज़ादी के बाद भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या को मुख्य रूप से ' हिन्दू - मुस्लिम ' की समस्या के रूप में देखा जाने लगा । यह तब भयंकर रूप धारण कर लेती है जब जातीय पहचान या धार्मिक विश्वासों को भावनात्मक रूप से हवा दी जाति है | ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इस समस्या के पीछे अंग्रेजों का हाथ माना जाता है , पर आधुनिक स्वतंत्र भारत मे साम्प्रदायिकता की समस्या के कारण कुछ और हैं ।वास्तव में विभिन्न धार्मिक - सामाजिक संगठनों द्वारा जान - बूझकर किये गए षड्यंत्रों का परिणाम होते हैं . ये ऐसे कारण हैं जो दिन - ब - दिन साम्प्रदायिकता को विकराल और भयावह रूप प्रदान करते जा रहे हैं। इसके कारण मानव की मानवता लुप्त हो जाती और बन जाती है सिर्फ परस्पर घृणा और द्वेष की एक गहरी खाई .

भारतीय जनता को मिली आज़ादी ने उसे विभाजन का दर्द भी दिया और लहूलुहान रक्तरंजित इतिहास भी। यह शायद कम था। देश की राजनीति ने छल - छद्म से जनता को कठपुतली बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी ।अधिकार व सुविधाएँ सिमटकर मुट्ठीभर लोगों के हाथ में आ गए । अनुमानित अनुपात में देश खुशहाली , शांति व विकास पाने में सफल न हो सका । अव्यवस्था , स्वार्थ। , अवसरवादिता , झूठे आश्वासनों , दलगत राजनीति , नेताओं के दाँव- पेचों का साम्राज्य बढ़ा । इक्कीसवीं सदी में जिस खुशहाली , शांति व विकास का स्वप्न हमने संजोया था वह भुखमरी , गरीबी , बेरोज़गारी , जातिवाद , साम्प्रदायिकता के कारण पस्त - ध्वस्त होने लगी । 1947 में घोला गया साम्प्रदायिकता का ज़हर कई गुना बढ़कर हमें ग्रसता चला गया , आज भी यह क्रम जारी है । सिक्ख - विरोधी दंगे (1984) , अयोध्या - विवाद , बाबरी मस्जिद का ध्वंस (1992) , मौत एवं आतंक का गढ़ बना कश्मीर , गुजरात के दंगे , मुम्बई - दंगे आदि इस बात के साक्षी हैं कि यह सिलसिला बढ़ता ही चला जा रहा है ।

वक्त आगे बढ़ता चला गया किन्त् साम्प्रदायिकता की भावना बीच - बीच में थोड़े बदले हुए परिवेश और रूप के साथ सर्प की तरह वातावरण को बार - बार विषाक्त करती रही | रचनाकारों ने इस साम्प्रदायिकता का सूक्ष्म अंकन , गहरा विश्लेषण अपनी रचनाओं द्वारा समय - समय पर प्रस्तुत किया । साम्प्रदायिकता पर आधारित उपन्यासों को कथ्य के आधार पर तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है । पहले चरण में देवेंद्र सत्यार्थी के ' कठपुतली ' (1954) , यशपाल के ' झूठा सच ' (1958) तथा भीष्म साहनी के ' तमस ' (1973) इत्यादि अनेक उपन्यास आते हैं , जिनमें देश - विभाजन से पैदा हुए साम्प्रदायिक तनाव , उससे सम्बद्ध हिंसा , लूटपाट , पलायन आदि का चित्रण मिलता है । दूसरे चरण के उपन्यासों में डॉ राही मासूम रज़ा का ' आधा गाँव ' (1966) , असगर वज़ाहत का ' जिस लाहौर नहीं देख्या ' ( ) , नासिरा शर्मा का ' ज़िंदा मुहावरे ' (1993) आदि उपन्यास मिलते हैं जिनमें देश - विभाजन के बाद भारत में रह गए अल्पसंख्यक मुसलमानों की ज़िंदगी और नियति , भारतीय नागरिक के रूप में उनकी मुश्किलों आदि का चित्रण मिलता है । तीसरे चरण के उपन्यासों में गीतांजलि श्री का ' हमारा शहर उस बरस ' (1998) , भगवान सिंह का ' उन्माद ' (1999) , भगवानदास मोरवाल का ' काला पहाड़ '

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

(1999) इत्यादि उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में देश में पल - बढ़ रही साम्प्रदायिक सोच और उससे उपजी भावनाओं के प्रसार तथा उनके कारणों की पड़ताल की गई है।

सत्ता व संपत्ति हासिल करने के लिए घिनौनी सम्प्रदायवादी राजनीतिक शक्तियाँ किस तरह जनता को गुमराह कर उनका सुख - चैन छीन लेती हैं इस पर गहरी संवेदना दृष्टि डालता उपन्यास है भगवानदास मोरवाल का उपन्यास ' काला पहाड़ ' ।

हरियाणा , उत्तर प्रदेश व राजस्थान की सीमा पर स्थित मेवात । जहाँ महू , बड़कली जैसे गाँवों में एक गाँव है नगीना । मेवात क्षेत्र में मेवों के क्षत्रिय पूर्वजों ने कभी इस्लाम कबूल कर लिया था । पूरा क्षेत्र मुस्लिम बहुल है । हिन्दू अल्पसंख्यक हैं ।हिन्दू - मुसलमानों में धर्म - जाति के नाम पर इस गाँव में कोई भेद - भाव नहीं है । यह गाँव मिली - जुली संस्कृति वाली भारतीय ग्रामीण संस्कृति का जीता - जागता उदाहरण है। यह वो गाँव है जहाँ पुत्र - जन्म या शुभ अवसरों पर हिन्दू दादा खानू और पचपीर पर चढ़ावा चढ़ाते हैं , मुसलमान पांच वक़्त की नमाज़ भी पढ़ते हैं और ' चाक ' भी पूजते हैं। मुसलमान औरतें हिंदुओं की तरह वर - वधू की आरती उतारती हैं । उनके अधिकांश रीति - रिवाज ,विश्वास , यहाँ तक कि समस्याएँ भी एक समान हैं । वे एक - दूसरे के प्रति धार्मिक सहिष्णुता रखते हुए पर्व - त्योहारों को परस्पर मिल- जुलकर मनाते हैं । प्रेम और सद्भाव से रहते हैं । लड़ते भी हैं , अपनी लड़ाई सुलझा भी लेते हैं । इनमें आपस में मनमुटाव हो जाते हैं अक्सर पर अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की रक्षा वे मिल कर करते हैं ।अयोध्या में बाबरी - मस्जिद का ध्वंस होने पर यहाँ इस गाँव में स्थितियाँ बदल जाती हैं । राजनीतिज्ञ , व्यवसायी व धर्म के ठेकेदार इस शांत शीतल जल में साम्प्रदायिकता का ज़हर घोलकर इस मिली - जुली पवित्र संस्कृति को दूषित कर देते हैं । ये लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए अल्पसंख्यकों की राजनीति करते हुए उनमें नफरत फैलाते हैं । कल तक मिल - जुलकर रहनेवाले हिन्दू - मुसलमान बँटने लगते हैं । साम्प्रदायिकता वैमनस्य फैलाती है । राष्ट्रीय - संपत्ति नष्ट होने लगती है , विकास अवरुद्ध हो जाता है । अफवाहों द्वारा उपजा अविश्वास , भय और आतंक जुनून में बदल जाता है । अल्पसंख्यकों के पलायन , निरपराध व्यक्तियों की हत्या , अपराधी तत्वों की लूट - पाट के बीच उपन्यास का केंद्रीय पात्र अनपढ़ बूढ़ा सलेमी इस ज़हरीली मानसिकता के खिलाफ संघर्ष करता है ।अपने मित्रों के साथ मिलकर पारंपरिक मूल्यों , रीति - रिवाजों को बचाए , बनाए रखने की कोशिश करता है । साम्प्रदायिकता से उपजी द्वेष , कटुता की भावनाओं को दूर कर सद्भाव , अपनापन , एकता व मानवता को अंतिम साँस तक सँजोने की कोशिश भी वह करता है । पर साम्प्रदायिक सद्भाव के अग्रणी सलेमी का अपना बेटा बाबू खाँ ही जब साम्प्रदायिक तत्वों का सरगना बन मुसलमान होने की घोषणा करता है तो सलेमी डर जाता है , या यूँ कहें कि हार जाता है । जिंदगी भर सद्भाव से जीनेवाला सलेमी जब अपने दोस्त मनीराम से अपने पाकिस्तान न जाने के पछतावे को व्यक्त करता है तो हृदय मार्मिकता से भर उठता है ।

यह एक अंचल विशेष की कथा ही नहीं अपितु पूरे देश की व्यथा - कथा है । भगवानदास मोरवाल का उद्देश्य यहाँ इन दंगों का ब्यौरा देना मात्र नहीं है , अपितु राष्ट्र - सेवा एवं धर्म की आड़ में छिपे उन स्वार्थी तत्वों का ब्यौरा देना है , जो आम इंसान को इस आग में झुलसाते हैं । साथ ही उनका उद्देश्य हिन्दू - मुस्लिम दोनों वर्गों के आम लोगों की सकारात्मक एवं नकारात्मक भूमिका को स्पष्ट करना भी है । स्वार्थी राजनेताओं , धर्मगुरुओं , भ्रष्ट पुलिस व प्रशासन - व्यवस्था , अखबार आदि अपने - अपने ढँग से साम्प्रदायिकता की आग में घी डालने का काम कैसे करते हैं , इसे भी लेखक ने उपन्यास में बखूबी उभारा है ।

राजनेताओं में नैतिकता , सच्चरित्रता हो तो वे अपनी शक्ति ,सत्ता व स्थिति का प्रयोग जनसामान्य के हितों की रक्षा के लिए करें। वर्तमान राजनेताओं को यह गुण छू तक नहीं गया । चौधरी करीम हुसैन या मुर्शीद अहमद चुनाव जीतने के बाद इलाके में झाँकने तक नहीं आते । प्रधानमंत्री की महू - यात्रा तय हुई । 1857 में फिरंगियों से लोहा लेते हुए शहीद हुए 258 मेवों की याद में एक शहीदी मीनार का शिलान्यास करना , उनके आने की वजह बनी। पूरी जनता में खबर फैलाई गई कि प्रधानमंत्री पेंशन बढ़ाने की घोषणा करने आ रहे हैं । तो मेवात के लोग सिंचाई के लिए नहर , रेलवे - लाइन , उद्योग - धंधे , रोज़गार , स्कूल - कॉलेज - अस्पताल जैसी बुनियादी माँगें लेकर पहुँच जाते हैं । उन्हें सुनकर मुख्यमंत्री का कंठ सूख जाता है । और प्रधानमंत्री - वह तो विकास का यह स्वप्न देखने से मानो इनकार करते हुए अपनी आंखों पर तुरंत चश्मा चढ़ा लेते हैं । लोगों की बुनियादी ज़रूरतें पूरी हों न हों , मुख्यमंत्री को ' मेवाड़ रत्न ' से , विधायक करीम हुसैन के पिता चौधरी अमीन खाँ को बिना कोई सकारात्मक योगदान किये मरणोपरांत ' बाबा - ए - कौम ' के खिताब से नवाजा जाता है । यहाँ लेखक ने पुरस्कारों के आबंटन की जोड़ - तोड़ की सरकारी व्यवस्था पर मार्मिक व्यंग्य किया है ।

मंत्रियों के आने के इंतज़ार में पुलिस चाक-चौबंद है । नियमों का उल्लंघन करनेवालों को समझाने का ढोंग भी करती है और महीना बाँधने की पेशकश भी । बाबरी - मस्जिद की खबर से हुए उपद्रव को रोकने की कोशिश करने के विपरीत वह दंगाइयों को प्रोत्साहित कर तोड़- फोड़ करने के लिए उकसाती है

एक युवक सलेमी को बड़कली पर पुलिस की भूमिका के बारे में कहता है - " सिपाई - विपाई तो घणाई हैं ताऊ - पर वे तो मजा सू तमासो देख रा हैं और मैंने तो एक सिपाई का मुँ सू ई भी सुनी ही के ऊ एक आदमी सू कह रो हो अरे, तम

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

या बड़कली पे काँई लू धूमस कर रा हो , ह्न नघीणा में आ जाओ और कुछ दुकान - वुकान लूटो । " 2 .

हिन्दू व मुस्लिम दोनों धर्मों के नेता , लोगों की धार्मिक भावनाओं को भड़काकर अपना स्वार्थ साधते हैं । साम्प्रदायिकता का स्वयं कोई तात्विक अस्तित्व नहीं होता । यह मानव की मूलभूत क्रिया नहीं , यह उत्तेजना से उपजी प्रतिक्रिया है । उपन्यास में ज्ञानचंद जैन , अभयचंद , विसम्भरदयाल आदि छः दिसंबर के संभावित मनगढंत आतंक के नाम पर सुनियोजित अभियान के तहत गाँव के चमारवाड़े में पहुँचते हैं । सारे हिंदुओं को एकजुट होने की सलाह देते हैं और उन्हें बचाने का झूठा आश्वासन भी । पर लीला जैसे लोग इनकी बातों में नहीं आते ।
" अरे इन मुसलमानों का कोई भरोसा ना है कि कब क्या कर दें- इन्ने खून - खराबे से तो डर लगे ही ना क्योंकि दया - धरम नाम की कोई चीज़ तो उनके पास होवे है ही नहीं - इसलिए अपनी तैयारी में कोई कमी ना रहनी चाहिए ।" 3.
खुद को दयानंद सरस्वती का दूसरा अवतार माननेवाले स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती , मस्जिदों की देखा- देखी लाउडस्पीकर लगवा कर उनपर गायत्री मंत्रो , वेदमंत्रों का उच्चारण करवाकर , प्रचार के बहाने अलगाव व नफरत के मंत्र बोलते हैं । मेवात के गाँवों में जाकर अल्पसंख्यक हिंदुओं को भड़काते हैं - " इन ससुरे कटुओं के खातर जब अलग से पाकस्ताण बनवा दिया तो फेर ये इस मुलक में क्यों कर पड़े हैं। इन बाबरों की औलाद को तो अड़ेते भगाणा जरूरी है , तभी इस मुलक में सुख समृद्धि होगी , तभी यह हिन्दू रास्टर बण सकेगा और तभी इस मुलक पे आर्य पुत्तर राज कर सकेंगे ।" 4 . पर सलेमी चाहता है कि गाँव में पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा प्रेम और सौहार्द्र बना रहे । , इसलिए वह समझाता है - " इन लीडरन्ने तो अपनी रोटी सेंकना सू मतलब है । ये तो चाहते हैं कि या इलाका में ऐसी बातें होती रहें - अरे जब कोई बुरो बखत आएगो, न तो ई करीम और मुरसीद ना आंगा हमारा पैं - हमीं एक दूसरान के काम आंगा । " 5.
डॉ नसीर और शफ़ीक़ अहमद जैसे लोग अपनी क्लिनिक में आनेवाले भोले - भाले लोगों का इलाज करने के बहाने उनमें साम्प्रदायिकता का ज़हर भी धीमे - धीमे घोलते हैं । इस तरह पढ़े - लिखे लोगों की भूमिका पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है

पंचायती चुनाव से दो दिन पूर्व मेहता , बिसंभर दयाल व ज्ञानचंद हिंदुओं की मीटिंग बुलाकर उन्हें मेवों के खिलाफ संगठित करते हैं। साम्प्रदायिकता के नाम पर उम्मीदवारों का चयन कर , उन्हें जिताने के लिए दूर जा बसे लोगों को लाने का प्रबंध किया जाता है । जो हिन्दू नेता शूद्रों से परहेज कर उनका खाते - पीते नहीं , वे भी गांधी - भक्ति का नक़ाब ओढ़कर उन्हें गले लगाते हैं। साम्प्रदायिकता खतरनाक है राष्ट्र के लिए , फिर भी अधिकांश राजनीतिक पार्टियाँ इसी को अपनाती हैं , क्योंकि राजनीतिज्ञ सिर्फ एक भाषा समझते हैं - ' वोट - बैंक ' की भाषा । वोटों के लिए चमारवाड़े , कुम्हारवाड़े की जिम्मेदारियाँ ही नहीं बाँटी जातीं , नोट भी बाँटे जाते हैं । सलेमी , मनीराम , नसीब खाँ जैसे बुज़ुर्ग लोग इन बदलते परिदृश्यों को देख हतोत्साहित होते हैं । स्वार्थी नेताओं को साथ मिलता है भटके हुए बेरोज़गार युवकों का - जैसे कि बाबू खाँ , सुभान खाँ आदि । बाबू खाँ नगीना में इस्लाम की तालीम देने के लिए मदरसा बनाने के लिए चंदा इकट्ठा करता है । उसे पिता का अपने हिन्दू दोस्तों के यहाँ आना - जाना अच्छा नहीं लगता ।उसकी इच्छा है कि पंचायती चुनाव में हाजी असरफ ही जीते । हिंदुओं के हाथ में सरपंची नहीं जानी चाहिए । सलेमी नेताओं से क्या कहता , अपने ही बेटे के विचार उसे डराने लगते हैं । वह अपने बेटे को डाँटता - डपटता है । समझाता है कि मदरसा तो गाँव में है , उससे ज़रूरी है स्कूल जिसमें गाँव के सभी बच्चे पढ़ - लिख लें ।

कुछ भटके तत्व मंदिर तोड़ने की कोशिश भी करते हैं । अखबार भी अपने ढंग से चीजों को इस तरह बढ़ा - चढ़ाकर पेश करते हैं कि तनाव बढ़ जाता है । गाँववाले नहीं जानते कि साम्प्रदायिकता क्या है ? , अयोध्या कहाँ है ? पर 6 दिसंबर को कुछ भी हो सकता है - यह कह - कहकर दंगे की आशंका और भय से लोगों को त्रस्त कर दिया जाता है । गाँव के गली - मोहल्ले सुनसान हो जाते हैं । घरों के बंद दरवाज़े तीस तारीख के बीतने का इंतज़ार करते हैं। मेवात संबंधी अफवाहों के बढ़ने के साथ ऐसी - ऐसी मनगढंत खबरें अखबारों में छपती हैं जिसके बारे में वहाँ रहनेवालों को पता नहीं , पर अखबारवालों को पता है । हुसैनदीन सलेमी को आकर बताता है कि इस इलाके को दूसरा पाकिस्तान बनाने के लिए क्या - क्या हो रहा है।
कहीं हरिजन - युवक को माँस का टुकड़ा खिलाकर मेव बनाये जाने की बात सुनाई देती है । कहीं हिन्दू परिषदवाले हिंदुओं पर होनेवाले कथित अत्याचारों की बात करते हैं । कहीं यह खबर कि तीस तारीख को कुछ झगड़ा - वगड़ा होगा - " सुना है तीस तारीख कू कुछ झगड़ो - वगड़ो होएगो ..." । 6 . जब सलेमी का पोता यह सूचना देता है तो सलेमी मनीराम और हरसाय के पास जाकर कहता है - " अरे झगड़ा - वगड़ा कुछ भी ना है - इन नेतान्ने तो कुछ है ना सिवाय झगड़ा - फिसाद करवाणा है । ऐसे ही हमारा ये करीम हुसैन और मुरसीद अहमद इकट्ठा हो रा है। वे भी चाहते हैं या इलाका में कुछ ना कुछ होतो रहे - अरे इलाका की फिकर तो इन्ने है ना , उल्टा एक दूसरान्ने लड़ाते हैं ...। " 7 .

विडंबना है कि दंगे की चपेट में सुभान खाँ , करीम हुसैन , स्वरूपानंद सरस्वती जैसे लोग नहीं आते । उन्हें तो विशेष सुरक्षा गार्ड मिल जाते हैं पर सलेमी जैसे शांतिप्रिय , समझदार लोग पुलिस की बर्बरता का शिकार होते हैं । हैरानी है कि जिन मेवों ने बाबर और अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा लिया था , जिन्होंने मुस्लिम लीग को भी कांग्रेस का प्रवक्ता न होने देकर पाकिस्तान का विरोध किया था , उन्हें ही 6 दिसंबर के बाबरी - मस्जिद ध्वंस की छाया में चौधरी करीम हुसैनों , अभयचंदों

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

, मृर्शीद अहमदों जैसे संकीर्ण स्वार्थी नेताओं की विभाजन की मानसिकता का शिकार होना पड़ा ।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि परस्पर प्रेम से साथ रहनेवाले लोग घबराकर बेरोज़गारी के कारण गाँव से पलायन करने लगते हैं । नगीना में विस्थापितों को पनाह मिलती है । पुलिस की बर्बरता का शिकार बने सलेमी खाँ के पोते की आँखों में भी खौफ़ व नफरत पनपने लगती है । नबी खाँ मनीराम से कहता है - " मनीराम अब तो सरकार भी तिहारी और पुलिस भी तिहारी है । हमारो भी या मुलक में कोई होतो तो आज ये दिन ना देखनो पडतो । " 8 . तो लेखक कहलवाता है - . " अरे असली तो या इलाका सू हिन्दून्ने ये लीडर ही भाग रा है - याद है या गांवों में जब आग लगी ही तो या ही मुरसीद ने या मुहल्ला में ई कही ही के मैं सिरकार सूं कहकर मुआवजो दिला दूंगों - आज तलक आ रो है अ मुआवजो ।" 9

समय के इस बेरहम दंश को न सह पाने के कारण वही सलेमी जब कह उठता है - . " मनीराम मोहे भी अब लग रो है के पाकस्तान ना जाके हमने कितनी बड़ी गलती करी है - अच्छा होतो अगर हम भी वा बखत पाकस्तान चला जाता - पतो न ऊपरबाला ने बाई बखत ऊ गांधी या इलाका में काँई लू भेज दिया - ऊ थोड़ा सा दिन और रुक जातो तो वा को कहा बिगड़ जातो - अरे ऊ तो हमने यां फँसा के अल्ला कू प्यारो होगो और भुगत रा है हम । " 10 . - तो हृदय में एक हूक सी उठती है और इस मार्मिक कचोट से मन विचलित - व्यथित हो उठता है । द्वेष व कटुता के बीच मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते सलेमी के इस मार्मिक उद्गार से गाँव की साँझी संस्कृति के क्षत - विक्षत होने और अविश्वास व भय के सर्व व्यापक हो जाने की अनुभूति होती है । अपने गाँव की संस्कृति को श्रद्धा से सहेजने की इच्छा रखनेवाले , प्रेम - सद्भावना , मेलजोल से जीने की चाहत रखनेवाले सलेमी को साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ानेवाली एक - एक घटना मानो बाणों की तरह चुभती जाती है और वह भीष्म की तरह मानो मृत्यु - शैय्या पर अपनी अंतिम घड़ी तक सब कुछ ठीक हो जाने के इंतज़ार में ,स्वप्न में जीत रहता है । अपने मित्रों के सामने मृत्यु - शैया पर पड़ा सलेमी पाकिस्तान , पतंग , गांधीजी , जिन्ना जैसे विषयों पर प्रलाप करते - करते जब दम तोड़ देता है ,तब उसकी मृत्यु पाठक को झकझोर देती है । और इस तरह आज़ादी के बाद की विडंबनात्मक स्थितियों के साथ आज़ादी के पूर्व की सामाजिक समरसता की गहरी यादों के बहाने हमारे भीतर गहरे तक पसरती जा रही साम्प्रदायिकता की जड़ों तक हमें पहुंचाने , अपनी कमियों से हमें रूबरू कराने में लेखक कामयाब हो जाता है।

इस तरह सत्ता - लोलुप नेताओं , प्रशासन , पाखंडी धर्मगुरुओं , आदि के द्वारा प्रज्वलित की जा रही साम्प्रदायिकता व उसके कारण आहत होते जीवन - मूल्यों को उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है । और फिर ये समस्या केवल इसी अंचल विशेष की कथा नहीं , पूरे देश में ऐसी समस्याओं से प्रभावित अंचलों की कथा का प्रतिनिधित्व करती है । पूरे देश के सभी गाँव - शहर साम्प्रदायिकता रूपी काले पहाड़ की चपेट में हैं । ग्राम्य - जीवन से पलायन हो रहा है , किसान आत्महत्याएँ कर रहे हैं , या फिर शहरों में मज़दूर बनने को वे विवश होते जा रहे हैं ।

एक तरफ स्थिति यह है तो दूसरी तरफ पढ़े - लिखे नौजवान कट्टरवादी हो चले हैं । सलेमी , मनीराम जैसे बूढ़े - बुज़ुर्ग (जिनकी संख्या अब उंगलियों पर गिनी जा सकती है) ही राष्ट्रवाद के एकाकी संरक्षक हैं जो मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए संघर्षरत भी हैं और तेज़ी से बदलते हालात , तार - तार होते सौहार्द्र के कारणों को न समझ पाने की हमारी आदतों और मजबूरियों से घबरा उठे हैं । सचमुच , गाँवों की , राष्ट्र की भाईचारे की भावना को टूटते देखना चिंतनीय है । यह सच है कि भारत अनेक धर्मों , जातियों , संस्कृतियों का संगम है । सब यहाँ एक - दूसरे से मिलते - जुलते भी हैं , टकराते भी हैं । इस टकराहट को बढ़ाने में सत्ता - लोभियों का बहुत बड़ा योगदान होता है । यह भी सच है कि भारतीय संविधान लागू होने के बाद भी , धर्म - निरपेक्ष राष्ट्र बनकर भी साम्प्रदायिक ताकतें और उनसे उपजी समस्याएँ अभिशाप की तरह ज्यों की त्यों बनी हुई हैं । यह किसी भी देश के लिए , विशेषकर हमारे जैसे देश के लिए अत्यंत घातक है । जब तक साम्प्रदायिकता की राजनीति करनेवालों के बहकावे में हम आते रहेंगे , तब तक न धर्म - निरपेक्ष राष्ट्र बनने का हमारा लक्ष्य पूर्ण होगा और न ही दिलों के बीच , प्रेम के बीच आयी पहाड़ - सी दूरियाँ समाप्त होंगीं।

संदर्भ - सूची :

1. समाजशास्त्र विश्वकोश , हरिकृष्ण रावत , पृ . सं . 45
2. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली ,द्वितीय संस्करण , 2004 ,पृ . सं. 420.
3. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, द्वितीय संस्करण , 2004, पृ . सं. 21.
4. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, द्वितीय संस्करण ,2004 , पृ . सं. 373.
5. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, द्वितीय संस्करण , 2004 , पृ . सं. 281.
6. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

,दिल्ली, द्वितीय संस्करण , 2004 , पृ . सं. 359.
7. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, द्वितीय संस्करण , 2004 ,पृ . सं. 303.
8. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, द्वितीय संस्करण , 2004 ,पृ . सं. 442.
.
9. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, द्वितीय संस्करण , 2004, पृ . सं. 442.
10. काला पहाड़ , भगवानदास मोरवाल , राधाकृष्ण प्रकाशन , दिल्ली, द्वितीय संस्करण , 2004 , पृ . सं. 442

© RRIJM 2015, All Rights Reserved